ICSSR Sponsored

ISSN: 2319-9997

*Journal of Nehru Gram Bharati University, 2024; Vol. 13 (2):109-117*

# संयुक्त परिवार के स्वरूप एवं प्रवृत्ति का अध्ययन

**मान सिंह एवं पूजा तिवारी**

समाजशास्त्र विभाग,

नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय),

जमुनीपुर, कोटवा,

प्रयागराज, उ.प्र.

*Received:28.11.2024* *Revised:13.12.2024* *Accepted: 18.12.2024*

**सारांशः**

परिवार समाज की सबसे प्राचीन संस्था है। एक संगठन के रूप में परिवार आदिकाल से समाज में सदस्यों के लिए एक आवश्यक संस्था रही है। ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर व्यक्ति विशेष व परिवारों दोनों ही माध्यम से होनेवाला विकास एक ऐसे सामाजिक परिवर्त्तन की नींव डालता है जो कि भारत में विगत दशकों के दौरान घटित हुआ। पश्चिमी समाजशास्त्राय अध्ययन में शहरी जीवन की प्रकृति तथा ग्रामीण क्षेत्रों से शहर आने वाले प्रवासियों पर नगरीकरण के प्रभाव विषयक विवेचना में भी नगर के भीतर इसे सामाजिक संबंधें में व्यक्तित्व शुन्यता, खालीपन, अन्तरवैयक्तिक संबंधें में अस्थायीपन लाने वाला बताया गया है। नगरीकरण की प्रक्रिया कुछ हद तक व्यक्तिवाद को बढ़ावा देने वाली, परिवारवाद का ह्रस, पारिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति वितृष्णा, पारिवारिक इकाईयों के लिए विघटनकारी, वैवाहिक स्थायित्व के लिए अपमानकारक है, जिसपर परम्परागत पारिवारिक इकाइयाँ निर्भर रहती है। परम्परागत संयुक्त परिवारों में सदस्य केवल घर पर ही भोजन किया करते थे। उन्हें होटल या अन्य इसी प्रकार के स्थानों पर भोजन करने की छूट नहीं थी विशेषकर महिला सदस्यों को परिवार के बुजुर्ग घर के बाहर भोजन करने का विरोध किया करते थे। परन्तु वर्तमान में यह अवलोकन किया गया कि संयुक्त परिवार के बुजुर्ग सदस्य चौके में बना हुआ भोजन करते हैं परन्तु नई पीढ़ी को पर्याप्त स्वतंत्रता इस बात की मिली है कि वे चाहे तो बाहर होटल, रेस्टोरेन्ट आदि में जाकर भी भोजन कर सकते हैं। बुजुर्ग लोग भी अब विरोध नहीं करते व यह कहते पाये गये कि चूकि यह नवदम्पत्ति आधुनिक है अतः उन्हें आधुनिक जीवन जीने की स्वतंत्रता होनी चाहिए यह संयुक्त परिवारों का आधुनिकीकरण है। परम्परागत संयुक्त परिवारों में धार्मिक कार्यों में मुखिया की सलाह एवं मार्गदर्शन के अनुसार प्रत्येक सदस्य को पारिवारिक धार्मिक गतिविधियों में भाग लेना ही पड़ता था। परन्तु अब सभी सदस्य अपनी मर्जी के अनुसार स्वतंत्र रूप से धार्मिक गतिविधियों में भाग ले सकते हैं। मुखिया का नेतृत्व अब आवश्यक नहीं रहा। यह संयुक्त परिवार का आधुनिकीकरण है।

**मुख्य शब्दः** परिवार, समाज, संगठन, संयुक्त परिवार, परम्परागत रिवाज, मनुष्य

**परिचय**

हाल के वर्षों में पारिवारिक जीवन पर नगरीकरण के प्रभाव संबंधी छवि सुधरी है। भारत में विदेशों से आये लोग सतत् उनके अपने देश तथा भारत देश के बीच मौजूदा सामाजिक व सांस्कृतिक विसंगतियों पर बहस में उलझे है। उन विसंगतियों से संदर्भित एक आम धरणा भारतीय पारिवारिक बंधन की निकटता से जुड़ी है, जो उस धरणा के ठीक विपरीत है, जैसा कि पश्चिम में विद्यमान है। इसके अलावा एक और पारिवारिक तथ्य जिसपर भारतीय अधिक गंभीर रहते हैं –

आवश्यकता के समय परिवार व अन्य संबंधियों को मदद व सान्तवना, विशेषतः वृद्धावस्था में जब सहायता की कीमत स्वयं को बड़े त्याग के रूप में भी चुकानी पड़ती है। समकालीन नगरीय परिदृश्य में कोई विचारशील भारतीय पर्यवेक्षक इस विचार को पूर्णतः उपेक्षित करेगा कि देश में वर्तमान में जारी सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्त्तन के प्रभाव से परिवार संस्था कमजोर हो जायेगी, तथापि बाहरी पर्यवेक्षक इस स्पष्ट आत्मविश्वास से ओत–प्रोत है कि भारतीय परिवार का मूलभूत सांस्कृतिक ढ़ाँचा न केवल वर्तमान में नाटकीय सामाजिक परिवर्तन से जुझने के लिए पर्याप्त है, वरन् इस तथ्य को भी स्थापित करने में सक्षम है कि ये परिवर्त्तन अवश्यम्भावी एवं सहज है।

भारतीय जब परिवार के विषय में कहते हैं तब वह परिवार, पति–पत्नी और उनके बच्चों का ही नहीं, वरन् समस्त रूप से निकट संबंधी पुरूष, उनकी पत्नियाँ व बच्चों का वृहत् समूह होता है, जो संपत्ति कार्य, भोजन आदि मामलों में आपसी प्रेम से ओत–प्रोत होते हैं। इन परिवारों में पुरूष समान रूप से भूमि, व्यवसाय, दुकान या व्यापार जैसी उत्पादक सम्पत्ति के मालिक होते हैं। परिवार के सभी सदस्य लिंग, आयु तथा विशेष क्षमता के अनुरूप अपना श्रमदान करते हैं।

हर कोई अपनी सामान्य जरूरतों के लिए एक सर्वसुलभ आर्थिक स्त्रोत की मदद लेते हैं। जिसका वित्तीय नियंत्राण परिवार के वरिष्ठ पुरूष या स्त्राी के प्रबंध्न में होता है, जो परिवार का मुखिया कहलाता है। मुखिया अपनी आज्ञाओं का पालन करवाता है तथा परिवार के समस्त सदस्यों के व्यवहारों को अनुकूलित एवं अपनी सत्ता तथा अधिकार का प्रयोग कर परिवार का संचालन करता है। समस्त सत्ता उसके ही हाथों में केन्द्रित होती है। मुखिया की आज्ञा की अवमानना करना परिवार के किसी भी सदस्य के लिए आसान कार्य नहीं होता। यदि कोई सदस्य वेतन या मजदूरी के लिए अथवा व्यावसायिक गतिविधियां के लिए परिवार के अन्य कमाऊ सदस्यों से कम कार्यरत है, तब उसकी कमाई भी पूर्ण या अधिकांश हिस्से के रूप में एकत्रित कर परिवार के आम बजट में शामिल कर भागीदार बनाया जाता है। यह सब पारिवारिक सम्पादन में सहकारी प्रयास की तरह क्रियान्वित होता है। परिवार समूह में सौहार्द्रता, सर्वमान्य वरिष्ठजनों द्वारा बुजुर्गो के सम्मान तथा युवाओं के कल्याण व खुशी के परस्पर सहयोग से कायम रखी जाती है, यही नहीं परिवार के सदस्यों से यह अपेक्षित होता है कि वे अपनी निजी आकांक्षाओं से अधिक परिवार की खुशहाली को महत्व दें।''

भारतीय परिवार की अवधरणा में परिजनों से न केवल संपत्ति, श्रम तथा उपभोग अपेक्षित है, वरन् एक छत के नीचे साथ–साथ रहने की निश्चित परम्परागत सोच भी शामिल है। यदि परिस्थितियाँ परिवार के कुछ सदस्यों को पृथक रूप से

रहने के लिए बाध्य करती है, परिवार बंधन के तिरस्कार से नहीं वरन् उसका सम्मान करते हुए, मात्रा परिस्थितिवश ऐसी स्थिति में परिवार संयुक्त इकाई माना जा सकता है तथा कई मामलों में उसी प्रकार से संचालित होगा जैसा कि किसी परिवार के आम निवास में करने पर होता है।

## संयुक्त परिवार के परम्परागत रिवाज

संयुक्त परिवार के परम्परागत रिवाजों में उपरोक्त परिवर्तन आधुनिकीकरण का ही परिणाम है। भारतीय समाज में परम्परागत रूप से संयुक्त परिवारों का प्रचलन रहा है। संयुक्त परिवार अनेक एकांकी परिवारों वाला एक गृहस्थ समूह है जिसमें रक्त सम्बन्ध व विवाह के आधार पर सदस्यता मिलती हैं, सदस्यों में सामान्य सम्पत्ति व पारस्परिक अधिकारों एवं कर्तव्यों की भावना पाई जाती है। सदस्य मुख्यतः एक साथ रहते हैं, सामान्य रूप में पूजा में भाग लेते हैं तथा एक ही रसोई का भोजन करते हैं। परन्तु यह जरूरी नहीं है कि सभी सदस्य एक ही छत के नीचे रहें।

अगर कोई सदस्य नौकरी के कारण बाहर रहता है परन्तु पैतृक घर को अपना घर समझता है सामूहिक पूजा इत्यादि में उपस्थित रहता है बड़ों के प्रति अपेन अधिकारों और कर्तव्यों को समझता है तो वह भी संयुक्त परिवार का ही सदस्य है। संयुक्त परिवार भारतीय सामाजिक संरचना का एक प्रमुख आधार है, जबकि एकांकी परिवार पश्चिमी देशों में पाए जाने वाले परिवार का एक प्रमुख रूप है।

यद्यपि आज भारतीय संयुक्त परिवार में अनेक प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं फिर भी यह अपनी उपयोगिता बनाए हुए हैं यह सत्य है कि आधुनिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप भारतीय समाज में एकांकी परिवारों को प्रोत्साहन मिला है तथा इनकी संख्या में निरनतर वृद्धि हुई है। आज दोनों ही प्रकार के परिवार भारतीय माज में पाए जाते है।। एक ओर नगरीय क्षेत्रों में एकांकी परिवारों की संख्या अधिक है, तो दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी संयुक्त परिवारों की संख्या अधिक है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि व्यवसाय के कारण आज भी संयुक्त परिवार अपनी उपयोगिता बनाए हुए हैं।

संयुक्त परिवार कई पीढ़ियों वाले बड़े आकार के परिवार होते हैं जबकि एकांकी परिवार अधिक से अधिक दो पीढ़ियों वाले ही होते हैं। एक संयुक्त परिवार में एक से अधिक एकांकी परिवार पाए जाते हैं। परिवर्तित परिस्थितियों में संयुक्त परिवार की परिभाषा ही एकांकी परिवार को सामने रखकर दी जाती है। संयुक्त परिवार एक ऐसा गृहस्थ समूह है जिसमें एक से अधिक एकांकी परिवार पाए जाते हैं एकांकी परिवार का अर्थ पति–पत्नी का बच्चों रहित अथवा अविवाहित बच्चों हित गृहस्थ समूह है।

## परिवार के उद्‌भव की पृष्ठभूमि

परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है, जिसका अस्तित्व आदिकाल से वर्तमान समय तक विद्यमान है। सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के साथ परिवार व्यवस्था का भी विकास होता रहा। संस्कृति के सभी स्तरों में चाहे उन्नत हो या निम्न, किसी न किसी प्रकार का पारिवारिक संगठन अवश्य पाया जाता रहा है। मानव प्रारंभ से ही समूह में रहता था। इसके पीछे मनोवैज्ञानिक रूप से देखें तो परस्पर सहयोग की आवश्यकता और सुरक्षा की भावना ही मुख्य कारण रही होगी।

प्रारंभिक स्थिति में मनुष्य ने यौन सुख के लिए स्त्री की अपेक्षा की, जिसने

कालांतर में इसे परिणय के सुसभ्य स्वरूप में परिणत कर परिवार की नींव रखी। इस तरह परिवार का प्रधान आधार विवाह है, जिसमें स्त्री–पुरुष विवाह के माध्यम से पति–पत्नी बनते हैं तथा एक–दूसरे के साथ जीवन व्यतीत करते हैं। कामेच्छा की पूर्ति, संतान को जन्म देना और उनका पालन–पोषण करना आदि विविध व्यक्तिगत और सामाजिक कार्य परिवार के माध्यम से ही संभव हैं। जन्म से मृत्यु तक व्यक्ति परिवार से जुड़ा रहता है। माता–पिता, पति–पत्नी, भाई–बहन और पुत्र–पुत्री आदि के संयोग से परिवार का निर्माण होता है। परिवार मनुष्य की जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति पूर्ण उत्तरदायित्व और कर्तव्यनिष्ठा से करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर परिवार के सदस्यों के लिए त्याग, बलिदान के लिए तत्पर रहता है। अतः परिवार संस्था का उद्‌भव और विकास इसी आधार पर हुआ है।

प्रत्येक परिवार का अपना अलग आवास होता है, जिसमें परिवार के सभी सदस्य निवास करते हैं। इससे सदस्यों को शारीरिक सुरक्षा प्राप्त होती है। प्रत्येक परिवार की पृथक वंश–परम्परा होती है, जिससे यह ज्ञात होता है कि किसी व्यक्ति का कौन–सा वंश है। गृहस्थ का सही रूप और दृष्टिकोण कुटुम्ब अथवा परिवार में ही देखने को मिलता है। 'गृहस्थ जीवन, व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का श्रेष्ठ भाग निरूपित किया गया है, जिसमें प्रत्येक स्त्री–पुरुष अपनी शक्ति को सामाजिक व धार्मिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह में और संतति के रूप में नई शक्ति के सृजन में लगाते हैं।'[10] अतः कहा जा सकता है कि परिवार मनुष्य के सभ्य और सुसंस्कृत होने का स्वाभाविक माध्यम है, जिससे मानव जीवन का उन्नयन होता है।

परिवार के सभी सदस्य परस्पर सहयोग, स्नेह और विश्वास के सूत्रों से जुड़े रहते हैं। 'परिवार के मूल आधार की महत्ता के कारण विवाह को एक विशेष पवित्रता और स्थायित्व प्राप्त होता है। स्वयं प्रकृति द्वारा प्रदत्त शक्तियां इसे अपूर्व बल देती हैं।'11 इस प्रकार परिवार नामक संस्था हर युग में रही है, समयानुसार इसमें परिवर्तन होता रहा है। विभिन्न कालों में परिवार व्यवस्था का स्वरूप जानने हेतु तीन कालखंडों में इसका विवेचन निम्नलिखित है–

## प्राचीन परिवार व्यवस्था

परिवार के उद्‌भव एवं विकास संबंधी शोध एवं अध्ययन में प्राचीन साहित्य रूपी स्रोतों का महत्त्वपूर्ण उपयोग किया जा सकता है, क्योंकि साहित्य के माध्यम से हम तत्कालीन समय की व्यवस्थाओं के बारे में जान सकते हैं। वैदिक युग से लेकर मध्यकाल तक भारत में अनेक प्रकार के साहित्य की सर्जना हुई है, जो हमारी अक्षय थाती है। सृजित साहित्य से भारतीय इतिहास, सभ्यता व संस्कृति का ज्ञान होता है। इन्हीं ग्रन्थों में परिवार व्यवस्था का भी विस्तार से उल्लेख मिलता है। तत्कालीन समाज और संस्कृति पर प्रकाश डालने वाले साहित्य तीन भाग में विभाजित किए गए हैं–

1. ब्राह्मण साहित्यः ब्राह्मण साहित्य के अन्तर्गत हिन्दू धर्म और समाज से सम्बन्धित अनेक साहित्यिक कृतियां सम्मिलित हैं। इन कृतियों में वेद (ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद) ब्राह्मण ग्रन्थ (ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद), वेदांग, महाकाव्य, पुराण,

स्मृतियां आदि सम्मिलित हैं। वेदों में देवी–देवताओं की प्रार्थना, यज्ञ–हवन, कर्मकाण्ड के नियम और नीति व आचार के संबंध में विधि–निषेध तथा इनके उपनिषद भाग में आध्यात्मिक सिद्धान्त और ब्रह्म विद्या का संग्रह है। वस्तुतः उपनिषदों, स्मृतियों, पुराणों तथा अन्य धर्मशास्त्रों जिस अध्यात्म विद्या का परिज्ञान होता है वे सभी वेद–ज्ञान की छाया है। यहां पर मुख्यतया वेदों में निहित पारिवारिक व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

2. जैन साहित्यः प्राचीन भारत के सामाजिक इतिहास में जैन साहित्य का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। जैन साहित्य से न केवल जैन आचार और धर्म का ज्ञान होता है बल्कि तत्कालीन समाज व्यवस्था का भी चित्रण देखने को मिलता है। आचारांगसूत्र, समवायांगसूत्र, कल्पसूत्र, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित आदि ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनसे प्राचीन काल की व्यवस्थाओं के विषय में ज्ञात होता है।

3. बौद्ध साहित्यः बौद्ध साहित्य से भी प्राचीन भारतीय समाज का चित्रण होता है। जातकों में गौतम बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाएं वर्णित हैं तथा उसी के माध्यम से जीवन के विविध पक्षों का वर्णन किया गया है। ये कथाएं कल्पना के आधार पर है, किन्तु इनसे सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। त्रिपिटक (सुत्तपिटक, अभिधम्मपिटक, विनयपिटक) ललितविस्तर, महावग्ग आदि ग्रन्थों के माध्यम से भारतीय समाज, संस्कृति और धर्म पर प्रकाश पड़ता है।

इन तीनों ही विचारधाराओं ने अपने–अपने दृष्टिकोण से चिन्तन और व्याख्या दी हैं। तीनों विचारधाराओं के अनुसार पारिवारिक व्यवस्था का वर्णन निम्नलिखित है–

**वैदिक विचारधाराः**

वैदिक संस्कृति के बारे में संपूर्ण जानकारी वेदों पर आधारित हैं। वेदों को अत्यधिक पवित्र और शाश्वत माना गया है। दैविक स्रोत से इनकी प्राप्ति मानी जाती है। 'वेद' शब्द 'विद्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है 'ज्ञान'। वेद को 'पवित्र विद्या' भी कहा गया है। वेद को 'श्रुति', 'त्रयी', 'छन्दस', 'निगम', 'आम्नाय' और 'स्वाध्याय' नामों से भी अभिहित किया गया है। वैदिक काल को दो भागों में बांटा गया है–ऋग्वैदिक काल और उत्तरवैदिक काल। ऋग्वैदिक सभ्यता का विस्तार 1500 ई. पू. से 1000 ई. पू. तक माना जाता है। इसके बाद का 1000 ई. पू. से 600 ई. पू. तक उत्तर वैदिक काल बताया गया है।

**ऋग्वैदिककालीन पारिवारिक स्थिति**

वैदिक आख्यानों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में पारिवारिक जीवन का बड़ा महत्त्व था। ऋग्वैदिक परिवार आर्यों के सामाजिक जीवन का आधार थे। परिवार समाज और राजनीति की महत्त्वपूर्ण इकाई माना जाता था। ऋग्वेद की ऋचाओं से ज्ञात होता है कि परिवार के लिए प्रयुक्त सामान्य शब्द 'गृह' है। ऋग्वैदिककालीन परिवार संयुक्त परिवार होते थे। एक परिवार के सभी सदस्य जिसमें तीन पीढ़ी के लोग एक ही घर में साथ–साथ रहा करते थे। माता, पिता, पुत्र, पुत्रवधुएं, कन्याएं

पौत्र आदि एक साथ रहते थे। परिवार में पति–पत्नी, संतान व अन्य सदस्य सुखमय जीवन व्यतीत करते थे। परस्पर सहयोग की भावना परिवार का महत्त्वपूर्ण अंग थी। पितामह या पिता ही परिवार का मुखिया होता था। कुल के रक्षक के रूप में उसके लिए 'कुलपा' शब्द भी मिलता है।[15]पिता के बाद ज्येष्ठ पुत्र को यह पद दिया जाता था। कई स्थानों पर उसे 'गृहपति'[16] और उसकी पत्नी को 'गृहपत्नी'[17] कहा गया है। पत्नी को 'जाया'[18] भी कहा गया है। धार्मिक कार्य पति–पत्नी सामूहिक रूप से करते थे। यज्ञ में वह पति के साथ रहती थी।[19] परिवार में माता का स्थान भी सम्मानजनक होता था।

ऋग्वैदिक काल में पितृसत्तात्मक परिवार होते थे। पिता अपनी संतान पर कठोर नियंत्रण रखता था। उस समय परिवार में पिता का स्थान सर्वोच्च होता था। परिवार के अन्य सदस्य पिता के आदेश की पालना करते थे और अवहेलना होने पर वह दण्ड दे सकता था। पिता की संपत्ति पर पुत्र का ही अधिकार होता था। पुत्र नहीं होने पर पुत्री को संपत्ति मिलती थी। पुत्र का जन्म पुत्री जन्म से श्रेयस्कर माना जाता था। विवाह के पूर्व कन्याएं अपने पिता के संरक्षण में रहती थी।

## पति–पत्नी के कर्तव्य

विवाहित स्त्री–पुरुषों के कर्तव्यों के सम्बन्ध में यजुर्वेद में उल्लेख है कि 'विद्या से सुप्रकाशित स्त्री व पुरुष दोनों ही उत्कृष्ट रीति से ज्ञान को प्राप्त कर, अविद्यारूप निद्रा का त्याग कर, वर्तमान और आगामी काल में इष्टापूर्त अर्थात् विद्वानों का सत्कार, ईश्वर की आराधना, सत्संगति करण, सत्यविद्या आदि का दानरूप इष्ट तथा पूर्ण बल, ब्रह्मचर्य विद्या की शोभा, पूर्ण युवावस्था, साधन और उपसाधन पूर्त को सिद्ध करें।' वर वधू को कहता है कि 'मैं सौभाग्य के लिए तेरा पाणिग्रहण करता है।' इसके साथ ही उस पर पत्नी के भरण–पोषण का दायित्व आ जाता है। पत्नी का कर्तव्य है कि पूरे परिवार को सुख दे। पति, सास, ससुर आदि की सेवा करे। उसको कहा गया है कि–हे वधू ! ससुर, पति, गृहवासी इन सभी के लिए तू सुखस्वरूपा हो। उसे गृहस्वामिनी, गृहलक्ष्मी, साम्राज्ञी, कल्याणी आदि कहा गया है। 'वह अबला न होकर वीरिणी (सबला) है।' दम्पति के कर्तव्यों में बताया गया है कि वे अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर अग्रसर हो। सांसारिक उन्नति के लिए सत्यनिष्ठा आवश्यक है। पुरुषार्थ और दान के प्रति ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा है कि 'सौ हाथों से कमाओ और हजार हाथों से दान करो।'पति को पत्नी के पालन–पोषण के लिए कटिबद्ध किया गया है और कहा गया है कि–'हे! नारी, मैं सदा तेरा पालन–पोषण करता रहूंगा, बृहस्पति (वेदज्ञ पुरोहित) ने तुझे मेरे लिए प्रदान किया है। हे प्रजनन शक्तिवाली, तू मुझ पति के साथ सौ वर्ष तक जीवित रह।'

विष्णु पुराण में पत्नी को सहधर्मचारिणी की संज्ञा प्रदत्त है, जिसके साथ गृहस्थ धर्म का पालन करने से महान फल की प्राप्ति होती है जो कि इस श्लोक से ज्ञातव्य है–सधर्मचारिणीं प्राप्य गार्हस्थ्यं सहितस्तया समुद्वहेद्ददात्येतत्सम्यगूढ़ं महाफलम्। कहा जा सकता है कि आदर्श गृहिणी के रूप में स्त्री का कर्तव्य गृहस्थ

जीवन को सुखी बनाना था, जिसका प्रतिष्ठापन वैदिक युग में हो चुका था।

**माता–पिता और संतान का परस्पर व्यवहार**

यजुर्वेद, अथर्ववेद में उल्लिखित अनेक मंत्रों में पुत्र प्राप्ति की कामना की गयी है। जिस प्रकार ऋग्वैदिककालीन परिवारों में पुत्र को अधिक महत्त्व दिया जाता था। उसी प्रकार इस काल में भी पुत्र का महत्त्व पुत्री से अधिक था। पुत्र उत्पन्न करना ही विवाह का मुख्य उद्देश्य माना जाता था। पुत्र को नरकत्राता माना जाता था। यह धारणा प्रचलित थी कि सत्पुत्र के जन्म लेने पर पुंनामक नरक से मुक्ति मिल जाती है। उल्लेख मिलता है कि 'पुत्र पुत् नामक नरक से पितरों की रक्षा करता है।' पुत्र उत्पन्न होने के बाद पिता ऋण से मुक्त हो जाता था। पुत्र को वंश परम्परा चलाने वाला कहा गया है। पिता अपने जीवनकाल में ही अपने पुत्रों के बीच संपत्ति का बंटवारा कर देता था। माता–पिता द्वारा सन्तान को शिक्षा देने के संबंध में कहा गया है कि–'हे प्राणवत् प्रिय सुसन्तान, तू मनुष्य आदि प्रजाओं के लिए कल्याणकारी एवं मंगलमय हो तथा विद्युत भूमि, अन्तरिक्ष और वट आदि वनस्पतियों के विषय में कभी शोक को प्राप्त न हो अर्थात् इनका श्रेष्ठ ज्ञान और सुरक्षा करके इनसे यथावत उपयोग ग्रहण कर।'

पुत्रों के लिए कहा गया है कि–'पुत्रों को चाहिए कि जैसे माताएं अपने पुत्रों को सुख देती है, वैसे ही अनुकूल सेवा से अपनी माताओं को निरन्तर आनन्दित करें और माता–पिता के साथ विरोध कभी ना करें। माता–पिता को चाहिए कि अपने पुत्रों को अधर्म और कुशिक्षा से युक्त कभी ना करें।' कहा गया है कि–'वह पूर्वजों के अनुकूल गुण वाला हो और सद्गुणों में श्रेष्ठ हो। पुत्र को माता–पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए कहा गया है कि पुत्र पिता की आज्ञा में रहें और माता का आदर करें तथा 'पिता के अनुकूल कर्मों को करने वाला हो, और माता के साथ समान मन वाला हो।'[9]पिता के लिए कहा गया है कि–'वह पुत्र को शिक्षा दे और उसके जीवन को प्रकाशित करे।' अथर्ववेद में निरूपित है कि–'कल्याणकारी और दूसरों को सुख पहुंचाने वाले पुरुष का पुत्र पापों का घर्षण करने वाला होता है।' सच्चरित्र पिता का पुत्र भी सुशील और अजेय होता है। गुरुजनों में माता–पिता को महागुरु कहा जाता है।

**पारिवारिक व्यवस्था**

आधुनिक काल में परिवार की अवधारणा के संबंध में देखें तो प्राचीन काल व मध्यकाल की तरह परिवार का स्वरूप पूर्ण रूप से संयुक्त नहीं देखने को मिलता है। एकल परिवारों का प्रचलन धीरे–धीरे बढ़ता गया। इक्कीसवीं शती तक आते–आते भारतीय परिवार व्यवस्था संयुक्त से एकल अधिक हो गई है। आधुनिक काल में जिन सामाजिक परम्पराओं और रूढ़ियों के कारण राज्य में राजा का और चर्च में पोप का एकाधिकार था, उसमें धीरे–धीरे शिथिलता आने लगी। कई आन्दोलन हुए और धीरे–धीरे लोकतंत्र का आगमन हुआ। लोकतंत्र शासन पद्धति का प्रभाव परिवार संस्था पर भी पड़ने लगा। परिवार के क्षेत्र में पुरुष का एकाधिपत्य हटने लगा। पूर्व में सन्तान के विवाह संबंध का निर्धारण पिता के द्वारा ही होता था। सन्तान को अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता नहीं थी। आधुनिक काल में स्वनिर्णय से विवाह करने की प्राथमिकता बढ़ी है। अनेक कार्य जो पहले परिवार द्वारा किए जाते

थे, उनके लिए अब संगठन बनने लगे हैं। पहले विवाह संस्कार को धार्मिक कृत्य माना जाता था।

मूलतः भारतीय परिवार का संरचनात्मक ढांचा पश्चिमी परिवार के स्वरूप से सर्वथा भिन्न है। भारतीय संयुक्त परिवार में अधिक साहचर्य व मेल–मिलाप की भावना निहित रहती है। सदस्यों के बीच आपसी संबंध बहुत व्यापक और दृढ़ होते हैं फिर भले ही पुत्र को शिक्षा, नौकरी आदि के कारण बाध्य होकर माता–पिता से अलग होना पड़े लेकिन अपने माता–पिता व परिवार से उसका लगाव व बन्धन अटूट होता है। जबकि पश्चिमी परिवार का स्वरूप संयुक्त न होकर एकल परिवार का होता है, उनमें भावनात्मक रूप से परस्पर गहरी आबद्धता नहीं होती है।

**निष्कर्ष –**

परिवार के संबंध में उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि समाज की सभी सामाजिक संस्थाओं में परिवार एक महत्त्वपूर्ण और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है। परिवार के बिना सभ्य मानव समाज की कल्पना करना असंभव है। कोई भी ऐसा समाज नहीं है, जिसमें परिवार की विद्यमानता न रही हो। मनुष्य अपने जीवन का प्रारम्भ परिवार द्वारा ही करता है और उसी से अपने अन्तर्निहित गुणों का विकास करता है। सभ्यता उन्नत होने की स्थिति में जबकि समाज का रूप अत्यन्त जटिल एवं व्यापक हो गया है, फिर भी परिवार के महत्त्व में कमी संदर्शित नहीं होती है। परिवार व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक व आध्यात्मिक विकास, नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने वाला, सामाजिक निष्ठा का आरोहण करने वाला स्थल है। गृहस्थ धर्म अन्य सभी धर्मों से महत्त्वपूर्ण है। महर्षि व्यास के शब्दों में 'गृहस्थ्येव हि धर्माणां सर्वेषां मूलमुच्यते' अर्थात् गृहस्थाश्रम ही सभी धर्मों का आधार है। गृहस्थी में कोई संविधान, कानून, सैनिक शक्ति या दण्ड विधान नहीं होता, सभी परस्पर सहयोगात्मक जीवन जीते हैं। इसीलिए परिवार में आपसी संबंध किसी दण्ड के भय से या कानून के दबाव पर नहीं निभाए जाते, बल्कि संस्कारों पर निर्भर होते हैं। परिवार में सभी व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं। व्यक्ति की काम–वासना को, पति–पत्नी के आपसी कर्तव्य में समाहित कर इसे एक संस्कार के रूप में स्वीकार कर सामाजिक मूल्य मानना परिवार संस्था की अनुपम देन है। गृहस्थाश्रम तप और त्याग का जीवन है। तप का सामान्य अर्थ व्रत से लिया जाता है लेकिन यहां यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि परिवार के निर्वाह के लिए, पालन–पोषण के लिए, संस्कारों को सींचने के लिए किये जाने वाले प्रयास भी किसी तपश्चर्या या व्रतनिष्ठा से कम नहीं है।

परिवार नामक संस्था ने मानव जीवन को आदिकाल से पथदर्शन दिया है। समय बदलता गया, हर क्षेत्र में परिवर्तन हुए, अनेक सामाजिक संस्थाओं ने अपना अस्तित्व खो दिया, परन्तु यह शाश्वत संस्था आज भी अपने परिवर्तित स्वरूप में विद्यमान है। हमारे देश में कई आक्रमण हुए, उन आघातों को सहकर हमारी सामाजिक व सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षित होने में परिवार संस्था का अत्यधिक योगदान है। वर्तमान संक्रामक काल के बाद नई परिस्थितियों में यह संस्था पुनर्गठित होकर

मानवीय विकास में अपना योगदान बनाए रखेगी, ऐसा कहा जा सकता है।

## संदर्भ सूची


1. चतुर्वेदी, सुषमा, 2004 ''हिन्दू परिवारों के परिवर्तित प्रतिमान'' विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0 सं0 2–3.
2. कपाड़िया, के.एम., 1966 ''मैरेज एण्ड पफैमली इन इण्डिया'', बाम्बेः आक्सपफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
3. सिंह, महेन्द्र नारायण, 1987 ''नगरीय परिवेश और हिन्दू परिवारः बदलते प्रतिमान'' विवेक प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0 57.
4. देसाई, आई.पी., 1964, ''सम ऐस्पेक्ट्स ऑफ फैमली इन महुवा'' बाम्बेः एशिया पब्लिशिंग हाउस, पृ0 38.
5. प्रभु, पी.एन., 1963 ''हिन्दू सोशल आर्गेनाइजेशनः अ स्टडी इन सोशल साइक्लोजिकल एण्ड आइडियोलाजिकल पफाउडेशन'' पापलूर प्रकाशन, बाम्बे, पृ0 217.
6. लावी, राबर्ट, एच. 1950, ''सोशल आर्गेनाइजेशन रूटलेज एण्ड केगन पॉल लिमिटेड, लंदन.
7. सिंह, महेन्द्र नारायण, 1987, ''नगरीय परिवेश और हिन्दू परिवारः बदलते प्रतिमान'' विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0 170.
8. आउरर, आर., 1932, ''द पफैमली'' यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, पृ0 274–275.
9. कार्वे, इरावती, 1953, ''किनशिप आर्गेनाइजेशन इन इंडिया'' बाम्बे, एशिया पब्लिशिंग हाउस.
10. सिंह, वाई, 1977, ''माडर्नाइजेशन आपफ इंडिया ट्रेडिशन'', थामसन प्रेस यइंडियाद्ध लिमिटेड, फरीदाबाद.
11. सिलविया, वटूक, 1989, ''मैकिंग न्यू होम्स इन द सिटीः अरबनाइजेशन एण्ड द कन्टेम्पेररी इंडिया वाई केरला एम. बोरडन, आक्सफोर्ड पब्लिशिंग, पृ0 187–189.
12. कार्वे, इरावती, 1953, ''किनशिप आर्गेनाइजेशन इन इंडिया, पूना, डेकन कालेज मोनोग्रापफ, पृ0 24.
13. 15. चतुर्वेदी, सुषमा, 2004 ''हिन्दू परिवारों के परिवर्तित प्रतिमान'' विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0 सं0 73–74.
14. कथलीन, गपफ, 1956, ''मपिलाः नार्थ केरला'' इडी. डैविड एम. स्केनदर एण्ड कैथलिन गपफ, मैटरीलिनियल किनशीप यब्रेकेली एण्ड लास एंजेल्सः यूनिवर्सिटी आफ केलिपफोर्निया प्रेसद्ध, पृ0 437–439.


**Disclaimer/Publisher's Note:**

The statements, opinions and data contained in all publications are solely those of the individual author(s) and contributor(s) and not of JNGBU and/or the editor(s). JNGBU and/or the editor(s) disclaim responsibility for any injury to people or property resulting from any ideas, methods, instructions or products referred to in the content.